UPNUL/2013/51445 Peer Reviewed & referred ISSN 2277-5854

ŚRĪVIDYĀ MANTRAMAHĀYOGA

Āgamic-Tāntric Research Journal

(Bi-annual)

Founder-Editor

Sri Dattātreyānandanāth

(Sitaram Kaviraj)

Editorial Advisory Board

Prof. Kamaleshdatta Tripathi

Emeritus Professor, Faculty of S.V.D.V.
BHU, Varanasi-5

Prof. Shree Kishore Mishra

Department of Sanskrit, Faculty of Arts,
BHU, Varanasi-5

Editor

Dr. Rajendra Prasad Sharma

Ex-Head, Department of Philosophy,
University of Rajasthan, Jaipur.

ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA

Varanasi (U.P.)

वर्ष 10 अङ्क 2

Printed and Published by Prakashanand Nath on behalf of Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.
Printed at Starline, H. No.-B-13/90, Sonarpura, Varanasi and Published at Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan, Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.

February, 2021

Editor :
Dr. Rajendra Prasad Sharma

Publications are available at :
Publications Department
ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA
Shiv Sadan, Nagawa, Varanasi-221005
Ph. 0542-2366622

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854
UGC Approved Journal (No. 40949)
UGC CARE-listed in Religious Studies

Type Setting :
Vishal Computers, Jaipur.

Printer :
Starline, Sonarpura, Varanasi

Price : 125/-

Note : Any dispute arising on articles published in this issue shall be decided under the jurisdiction of Varanasi Court only.

विषय–सूची

	सम्पादकीय	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	
शोधलेख			
1.	गर्भकाल में ईश्वर-जीव सम्बन्ध का वैज्ञानिक स्वरूप	आचार्य गुलाब कोठारी	1–4
2.	श्रीविद्या के संदर्भ में श्रीसूक्त का विवेचन	डॉ. आदित्य आंगिरस	5–15
3.	भारतीय दार्शनिक भाष्यकारों की शोध–पद्धति का अनुशीलन	प्रो. सरोज कौशल	16–29
4.	आगमतन्त्रस्य सामान्यपरिचयः	प्रो. शीतलाप्रसादपाण्डेयः	30–37
5.	अभिनवगुप्त विरचित *श्रीपरात्रिंशिका* में अनुत्तरतत्त्व की दार्शनिक मीमांसा	डॉ. प्रदीप	38–47
6.	श्रीविद्यासाधक पं. सम्पूर्णदत्तमिश्र की सारस्वत साधना	प्रो. नीरज शर्मा	48–52
7.	आचार्य मधुकरशास्त्री कृत आगमिक स्तुति *श्रीमातृलहरी*	डॉ. स्मिता शर्मा	53–60

8.	बाला त्रिपुरा मन्त्र का पौराणिक सम्बन्ध	श्रुति एच.जानी	61-64
9.	देवीपुराणान्तर्गत शिवागमीय योग	योगेश प्रसाद पाण्डेय	65-70
10.	नेपालराष्ट्रे शैवागमस्य प्रभावः	लेखनाथपौड्यालः	71-75
11.	श्रीविद्योपासक पं. श्रीहरिशास्त्री दाधीच एवं वाणीलहरी	डा. स्मिता शर्मा प्रो. नीरज शर्मा	76-84
12.	समकालीन दार्शनिक चिन्तन में मोक्ष की अवधारणा	प्रो. सुशिम दुबे	85-96
13.	मोक्ष प्राप्ति के नैतिक आदर्शों की उपदेशिका – *हंसगीता*	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	97-102

ग्रन्थ समीक्षा

14.	शब्द यात्रा का विश्व कोषात्मक सन्दर्भ ग्रन्थ : अक्षर यात्रा	महामहोपाध्याय देवर्षि कलानाथ शास्त्री	103-104

श्रीविद्योपासक पं. श्रीहरिशास्त्री दाधीच एवं वाणीलहरी

डा. स्मिता शर्मा*
प्रो. नीरज शर्मा**

पं. हरि शास्त्रीजी का जन्म जयपुर के दाधीचवंश के नामावल गोत्र में वैशाख कृष्णा चतुर्थी संवत् 1950 अर्थात् सन् 1893 में हुआ था। आपके पिता का नाम पं. दामोदर तथा माता श्रीमती घींसी था। परम्परानुसार आठ वर्ष की आयु में पं. कृष्णचन्द्र जी ने इनका उपनयन संस्कार किया। प्रारम्भ में हरिशास्त्रीजी ने श्री मांगीलाल दाधीच से वैदिक मन्त्रार्थ ज्ञान, *शौनक प्रतिशाख्य, बृहद्देवता, छन्दशास्त्र,* वेदाङ्गज्योतिष का अध्ययन किया। इन्होने पं. मंगनीराम श्रीमाली से व्याकरण और पं. लक्ष्मीनाथजी द्राविड़ से साहित्यशास्त्र का अध्ययन किया। शास्त्रीजी ने धन्वन्तरि के अपरावतार वैद्य लक्ष्मीराम जी से आयुर्वेद का अध्ययन किया। व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् पं. चंद्रदत्तजी ओझा से काव्यरचना कर्म की प्रेरणा ग्रहण की। हरिशास्त्रीजी को जयपुर के तत्कालीन सभी प्रकाण्डविद्वानों का आशीर्वाद और स्नेह मिला। महामहोपाध्याय पं. दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने हरिशास्त्रीजी को शाक्त सम्प्रदाय की दीक्षा प्रदान की। पं. हरि शास्त्रीजी ने जीविकार्थ जयपुर के दरबार हाईस्कूल और उसके बाद महाराजा संस्कृत कालेज में अध्यापन किया, वहीं से आप सेवानिवृत्त हुए।

पं. हरिशास्त्री दाधीच शाक्त सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त शक्ति के अनन्य उपासक हो गये। ये भगवती पराम्बा के परम साधक थे। पं. हरिशास्त्रीजी को समय-समय पर अपने प्रखर वैदुष्य एवं ज्ञान-अवदान के कारण अनेक सम्मान एवं उपाधियाँ प्राप्त होती रही। आगमरत्न, आम्नायधुरन्धर, आशुकवि कविभूषण, आयुर्वेदभूषण, काव्यरत्न, वेदान्तभूषण, पुराणप्रभाकर आदि उपाधियाँ और सम्मान आपको प्राप्त हुये।[1]

जयपुर के संस्कृत विद्वानों में सारस्वत अवदान की दृष्टि से भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के बाद पं. हरिशास्त्रीजी का ही नाम आता है। उन्होंने अपनी अधिकांश रचनाओं के हिन्दी पद्यानुवाद भी किया। शास्त्रीजी के द्वारा किया गया *दुर्गासप्तशती* का पद्यानुवाद अत्यन्त प्रशस्त तथा उपयोगी है। शास्त्रीजी की रचनाओं में इनका अद्वितीय वैदुष्य परिलक्षित होता है। शास्त्रीजी विनोद प्रिय, निर्भीक वक्ता, लेखक, कवि, वैद्य, प्रवाचक, सिद्ध साधक एवं आचार्य थे। डूंगरपुर वास्तव्य पं. गणेशराम शर्मा के शब्दों में—

'महाभागोऽयं श्रीमद्धरिनारायणशास्त्रीदाधीचमहोदयो निस्सन्देहं भगवत्या देव्या परमाराधको महोपाध्यायः साहित्यशास्त्रनिष्णातः सफलः प्राध्यापको ग्रन्थप्रणेता, सुरभारतीसेवकः सिद्धासनः सम्पादकः सिद्धलेखनी-

को महालेखकः महाकवि कृतिमान् स्वाभिमानी स्वात्मगौरत्ववान् महापण्डित आशुकविश्चासीत् न केवलमयं संस्कृतपण्डित एव केवलममूद्धरं च ज्योतिषादिनानाशास्त्रेष्वपि निपुणं व्युत्पन्नो गम्भीर ज्ञानोदधिश्चासीत्। आगमतन्त्रेषु त्वस्यातितरामनन्यसाधारणी प्रामाणिकी च प्रतिपत्तिरासीत्।"[2]

सरस्वती के परम उपासक आशुकवि शास्त्रीजी ने निष्काम भाव से आजीवन काव्य सर्जना की। साधक शास्त्रीजी ने अपने कर्मानुष्ठान के अनुरूप ही वेद, आयुर्वेद, अलंकार, तंत्रादि नाना विषयों पर प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। शास्त्रीजी ने *वाणीलहरी, सुवर्णलक्ष्मीनक्षत्रमाला, सिद्धिस्तव, साम्राज्यसिद्धिस्तव, श्रीललितासहस्रकाव्यम्,* नामक महार्ह शाक्त ग्रन्थरत्नों का प्रणयन किया जो शक्ति उपासना के क्षेत्र में अमूल्य निधि है।[3] इनके अतिरिक्त श्रीराममानस पूजनम् आदि अनेक अन्य अनेक सिद्धस्तोत्र और गीतियाँ लिखी हैं। *उदरप्रशस्ति* नानक व्यंग्य और *नाथवंशप्रशस्ति* आदि प्रशस्तिकाव्यों के साथ श्री हरिशास्त्री जी ने कथा, निबन्ध और शास्त्रीय साहित्य में भी विशिष्ट योगदान किया है। इनमें *अलङ्कार कौतुकम्, कौलविलास, वर्णबीज प्रकाश, संजीवनी साम्राज्य* आदि उल्लेखनीय शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। हिन्दी भाषा में पं. हरिशास्त्रीजी ने दश उपनिषदों का *पद्यानुवाद, दुर्गासप्तशती का पद्यानुवाद* तथा *मानमाधव महाकाव्य* का भी प्रणयन किया। पं. हरिशास्त्री दाधीच ने 20 फरवरी 1970 को इस नश्वर संसार से महाप्रयाण कर पराम्बा सायुज्य प्राप्त किया। आशुकवि पं. हरिशास्त्री दाधीच का कृतित्व राजस्थानीय संस्कृत वाङ्मय के लिये अन्यतम अवदान हैं।

वाणी लहरी—पण्डित हरिशास्त्रीदाधीच-रचित *वाणीलहरी* वस्तुतः भगवती आद्याशक्ति पराम्बा के 'वाक्' स्वरूप का स्तवन है जिसमें 'या देवी सर्वभूतेषु वाणी रूपेण संस्थिता' रूप शारदा-सरस्वती के दिव्य रूप, गुण, कर्मादि की वन्दना की गयी है। इस लहरी में भगवती के रूप-सौन्दर्य का परम्परानुसार आपादमस्तक नख-शिख वर्णन किया गया है। यह लहरी राजस्थानीय संस्कृत लहरी परम्परा की निधि तथा शाक्त-उपासना का अमूल्य स्तोत्र है। पचास पद्यात्मक वाणीलहरी का प्रकाशन सन् 1918 में हुआ। *'राजस्थानलहरीलीलायितम्'* ग्रन्थ में प्रो. प्रभाकर शास्त्री ने इसे संकलित और संपादित किया है।[4] इस स्तोत्र में प्रारम्भ से अन्त तक भगवती आद्याशक्ति के दिव्यरूप, गुण, कर्मादि का स्तवन, आत्मदैन्यपूर्वक शक्ति के कृपाकटाक्ष की प्रार्थना निवेदित है। इस स्तोत्र में शाक्ततन्त्र की उपासना पद्धति के अनुरूप भगवती वाणी के रहस्य वर्णित है।

लहरी के प्रारम्भ में सांख्यशास्त्र की त्रिगुणात्मिका प्रकृति एवं वेदान्तदर्शन की सच्चिदानन्द ब्राह्मी-ब्रह्मकला को नमस्कार किया गया है। अनुष्टुप छन्द में कवि ने वाणी को समस्त चराचर जगत को व्याप्त करने वाली, त्रिगुणात्मिका, दिव्या, सच्चिदानन्दस्वरूपा ब्राह्मी के रूप में प्रणाम किया है—

गुणत्रयमयीं दिव्यां परिव्याप्तचराचराम्।
सच्चिदानन्दरूपां तां ब्राह्मीं ब्रह्मकलां स्तुमः॥[5]

भगवती सरस्वती स्वयं शरत्काल के चन्द्रज्योत्सना, स्फटिकमणि, कर्पूर, कुमुद, क्षीरसागर के सुधाफेन के समान शुद्ध निर्मल कान्ति और श्वेतप्रभा स्वरूप वाली और अत्यधिक माधुर्यपूर्ण है अतएव कवि ने भगवती के निर्मल स्वरूप का वर्णन करने के लिये स्वयं की वाणी की निर्मलता के लिए प्रार्थना की है—

शरच्चन्द्रज्योत्स्नास्फटिकमणिकर्पूर-कुमुद-
स्फुरन्मुक्ताक्षीराम्बुधि-हिमसुधाफेन-विशदम् ।
दलद्रम्भाजाति-प्रसवनवनीताऽधिकमृदु-
महः किञ्चिद् वाचां मम विकृतिमाचामस्तुतमाम् ॥[6]

आलंकारिक शैली में कवि ने वह भगवती वीणापाणि सरस्वती के दिव्य गुण-कर्मों का कीर्तन करते हुए वाणी में काव्यामृत रसपात्रता के लिए निवेदन किया है। चंद्रप्रभा कान्ति वाली वह भगवती प्रपन्न भक्तों को सभी ऐश्वर्य प्रदान करने वाली, उनके समस्त दुःखों को दूर करने वाली है, वाणी की अधिष्ठात्री वह देवी श्री हरिचरित का गान करती हुई कवि की का आलम्बन है—

प्रदात्री भव्यानां दुरितपरिहात्री प्रणमतां
निधात्री वीणाया हरिचरितगात्री सुमधुरम्।
वचोऽधिष्ठात्री सा शशि-विशदगात्री प्रकुरुतां
विधात्री काव्यानाममृतरसपात्रीं मम गिरम् ॥

वाणीलहरी भगवत्पाद आदिशङ्कराचार्यप्रणीत *सौन्दर्यलहरी* के प्रेरित रचना है। कवि ने देवी के दिव्य स्वरूपाधायक द्रव्यस्तोत्र के रूप में सौंदर्यलहरी के समान ही, परम्परानुसार भगवती वाणी का नखशिख वर्णन किया है। उन्होंने भगवती के चरणों से प्रारम्भ कर शिर तक सभी अंगों का दिव्य स्तवन किया है। प्रारम्भ में चार पद्यों में कवि ने श्रीचरणों का वर्णन किया है तदनन्तर जंघा, जानु तथा उरू का वर्णन है। इसी भाँति काञ्ची, कटि, नाभि, नितम्ब, उदर, रोमावली, त्रिवली, हृदय, मुक्तामाला, कुच, स्कन्ध, भुजा, अङ्गुली, करतल, कण्ठ, चिबुक, ओष्ठ, दन्त, मुख, नासिका, कपोल, कटाक्ष, नेत्र, कर्ण, भाल, केशपाश, वीणा तथा भगवती के बीज मन्त्र का कवित्वपूर्ण स्तवन किया गया है।

यह भगवती शक्ति के चरण-कमलों में अनुरक्ति मन्द बुद्धिवाले अज्ञानी मनुष्य को भी देवगुरु बृहस्पति के तुल्य अत्यन्त ज्ञानवान् बनाने की क्षमता रखती है। अपने अरुणनखों की सहायता से समस्त संसार के अन्धकार को नष्ट करते हुए सूर्यदेव का उदित होना भगवती की कृपा से ही हो रहा है। अस्ताचलगामी होने पर, लोक की दृष्टि में सूर्य चाहे ओझल हो जाता है परन्तु भगवती के चरणतल की दीप्ति में वह लालिमा के साथ सदैव विराजमान रहता है—

ससूतश्चण्डांशुः किल तिमिरकाण्डान्विदलयन्
प्रखिन्नो यात्यस्तं पुनरपि समुद्यान्ति निशि ते ।

नृणामन्तर्ध्वान्तं तव तु दलयन्तोऽरुणनखा
विराजन्तेऽम्ब ! त्वच्चरणतलभानोर्धुरि सदा ॥[7]

आपादमस्तक नखशिख सौन्दर्य वर्णन प्रसग में क्रमशः भक्तकवि की दृष्टि चरणों से प्रारम्भ होकर मस्तक की ओर जाती है। भगवती के चरण कमलों से प्रारम्भ कर कदलीगर्भकलिका के समान लावण्य वाले जंघाओं, घुटनों और कटि प्रदेश के दिव्य सौन्दर्य का वर्णन किया गया है । चन्द्रमा के समान दैदीप्यमान जानुकी शोभा का वर्णन करने केलिए कविको कोई उपमान नहीं मिलता है अतः भगवती के दैदीप्यमान जानु को वह चन्द्रमा की कान्ति से भी अतिशायी मानकर उसका स्तवन करता है। भगवती के उरुयुगल स्तोता के समस्त पाप संतापो का का ध्वंस करने वाले हैं। जानुसे प्रारम्भ होकर क्रमशः पृथुल होते हुए वे करभशुण्ड के समान शाटी के भीतर शोभायमान हैं, उनकी कोमलता और कान्ति दिव्यातिदिव्य है। पराम्बा भगवती वाणी के कटिप्रदेश की शोभा का वर्णन करने में कवि स्वयंको असमर्थ अनुभव करता है, उसकी विमलकान्ति और शोभा भगवती की मेखलाकाञ्ची के क्वणन से स्वयं निनादित होती है। भगवती के कटिप्रदेश में मधुर निनाद करने वाली नवनटी के समान काञ्ची का यह संगीत सर्वोत्कर्षशाली है जो भगवती के गोद में रखे उनकी वीणा के संगीत का अनुसरण करता है[8]—

श्रियां रङ्गस्थाने पटमपि दधाने सुजघने
त्वदीयेयं वीणा क्वणमनुसरन्ती सुमधुरम् ।
क्वणन्ती नृत्यन्ती समधिगमयन्ती सुरवधूः
सहाङ्गैः सङ्गीतं जयति बत काञ्ची नवनटी ॥

भक्तकवि कटितट पर सुमधुर स्वरका विस्तार करती हुई काञ्ची-मणिमेखला की तुलना कलहंसों की पंक्ति से करता है और उससे अपनी बुद्धि की निर्मलता के लिये प्रार्थना करता है । भगवती वीणापाणि के नाभि और नितम्ब का सौन्दर्य भक्तों को समस्त कष्टों से निवृत्ति और अभीष्ट फलों की प्राप्ति कराने वाला वर्णित है। जगज्जननी के उदरप्रदेश की शोभा भी अत्यन्त दिव्य और गुणशालिनी है। भगवती का उदरसमुद्र के साथ समानता रखता है और उससे भिन्नता भी रखता है। समुद्र खारे जल से परिपूर्ण है, अगस्त्य ऋषि के द्वारा उसका पान किया गया, उसमें वाडवाग्नि का भी निवास है तथा उसका मन्थन भी किया गया है। इन सबसे सर्वथा भिन्न देवीका उदर नवीन समुद्र के समान है जो अमृत के लावण्य की शोभा के समान भुवनजन रत्नों को उत्पन्न करनेवाल है ऐसे उदरपयोधि से कवि अपनी रक्षा के लिए निवेदन करता है—

अपीतोऽगस्त्येन ध्रुवमपि जडोघैर्न भरितः
न च क्षारो नो वा ज्वलनपरिलीढो न मथितः ।
सुधालावण्य-श्रीभुवनजनरत्नानि जनयन्
नवीनोऽयं पातु त्वदुदरपयोधिर्जननि ! माम् ॥[9]

भगवती सरस्वती की त्रिवली का स्तवन करते हुए यह भाव प्रकट किया गया है कि यह त्रिवली त्रिगुणात्मिका है और इसी से पृथक्-पृथक् गुणों वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश के गुण उत्पन्न होते हैं। भगवती के सुन्दर कोमल शरीर के मध्य मे पुलकावलि के रूप में सम्पूर्ण वाङ्मय और वर्णावली सुशोभित होती है जिसके दर्शन से अज्ञानी भी ज्ञान का सागर बन जाता है। भगवती के उदरस्थल को स्नेह और करुण रसका आकर कहा गया है । इनकी गुरुता और शोभा करीन्द्रों के गण्डस्थल के गर्व को चूर्ण करनेवाली है। असीम करुण रसके भार से भगवती सरस्वती का कटिमध्य भाग विनत—झुका हुआ है कमलासन पर विराजमान भगवती अपने भक्तों को निरन्तर आनन्द प्रदान करने वाली है। भगवती की चारों भुजाएँ अविद्या रूपी संसाराग्नि में दग्ध लोगों केलिए चारअमृत की सरिताओं केसमान हैं । परमकल्याण कारिणी इन भुजाओं से संसार में सुख का विस्तार होता है। भगवती की ये भुजाएँ कल्पवृक्ष की शाखाओं के समान समाश्रितों को समस्त अभीष्ट फलप्रदान करनेवाली, बुद्धि की जडता को समाप्त करनेवाली तथा शीघ्र ही समस्त पुरुषार्थों को सिद्ध कराने वाली है।

स्थल कमलिनियों की कान्ति से स्पर्धा करनेवाली भगवती की अंगुलियाँ तीनों लोकों में सुख और शान्ति का विस्तार करें, ऐसी कवि की याचना है। भगवती के करतल खिले हुए रक्तकमल दलकोण की कान्ति को भी लज्जित करनेवाले हैं। अमृत से संसिक्त भगवती के करतलों की शोभा की तुलना किसी से नहीं की जा सकती है तथापि कविकर्म के लोभ में वर्णन करता हुआ कवि आत्मविनय प्रस्तुत करता है । भगवती के मृदु विशदकण्ठ में सुधा सुषमा का निरन्तर निवास है, हे जगत् जननी इस मधुर अमृतवर्षा से यह संसार कभी भी तृप्त नहीं होता इसकी तृष्णा दुर्निवार है।

जगदम्बा के सुशोभित चिबुक के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि विचित्र भ्रान्ति का अनुभव करता है यह क्या सम्पूर्ण अमृत का सार है अथवा घनसार है यह चन्द्रमा का बिम्ब है अथवा निर्मल कौस्तुभ है अनुपम कानिका नित्य विस्तार करता हुआ जगदम्बा का रूचिर चिबुक मेरे अन्तःकरण में पवित्रता प्रदान करे—

सुधानां सार: किं किमुत घनसारस्य गुलिका
हिमांशोर्बिम्बं किं विमलमथवा कौस्तुभ इति ।
किरन्नित्यं भ्रान्तिं यदनुपमकान्तिं कलयतां
मदन्तःशुद्धिं ते रुचिरचिबुकं तत्प्रकुरुताम् ॥[10]

भगवती के दिव्यहास में प्रकट होनेवाली दन्तपंक्ति को आवृत्त करनेवाले ओष्ठ भक्तों की समस्त चिन्ताओं को नष्ट कर देते हैं। भगवती के ओष्ठ की आभा अपूर्व है और उनके भीतर दाडिम कणों की भांति दन्तपंक्ति सुशोभित होती है। जगदम्बा की स्वच्छन्द हंसी भक्तों के समस्त मनोरथों को पूर्ण करनेवाली कही गयी है । जगज्जननी के मुखचन्द्र से प्रकट होता निर्मल मुखहास अपनी उदीयमान किरणों से दसों दिशाओं को

प्रकाशित करता है। भगवती का यह मुखचन्द्र न तो चन्द्रमा के समान कलंक वाला है, न ही जड़ है और न ही कभी दिवस मालिन्य को प्राप्त होता है। यह अतुलनीय है।

आशुकवि पं. हरिशास्त्री दाधीच ने भगवती की नासिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए यह भाव प्रकट किया कि भगवतीके श्वासों से निकलने वाली परिमल गन्ध को प्राप्त करने के लिए अपने सौन्दर्य से समस्त कुसुम समुदाय को लज्जित करनेवाले, कमल समूह याचना करते रहते हैं। भगवती की नासा भक्त कवि के समस्त दुरितों का नाश करने वाली कही गयी है ।

जगत् जननी के कपोलों की दिव्य शोभा का स्तवन करते हुए कहा गया है कि यह सुन्दर पुलकावलि वाले कपोल हस्तिशावक के दन्तशकल के समान निर्मल प्रभा-कान्ति वाले हैं, स्वर्ण कुण्डलों से युक्त हीगें की कान्ति से प्रपूजित ये कपोल दुग्ध-फेनके,साथ क्रीड़ा करते हुए और अभिनव नवनीत के समान अत्यन्त मृदुल हैं—

प्रभाजालैर्लोलौ कलभरदनच्छेदविमलौ
पयः खेलत्फेनाभिनवनवनीतातिमृदुलौ ।
वतंसाश्चद्धीराकलितकलनीराजनमितो
कपौलौ कल्याणं तव सपुलकौ मे कलयताम् ॥[11]

इस लहरी काव्य के प्रत्येक पद्य का चतुर्थ चरण भगवती के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग की दिव्य शोभा के वर्णन के अनन्तर दुरितनाश, अभीष्ट सिद्धि कल्याण, मुक्ति, सद्गति, और कृपाकांक्षा के भाव से संवलित है।

भगवतीके कृपापाङ्ग (कटाक्ष) का पं . हरिशास्त्री दाधीच ने अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है देवी के मुखकमल पर सुशोभित यह कटाक्ष वात्सल्य रसके स्निग्ध रससे सदा परिपूर्ण हैं। देवी के कृपाकटाक्ष यमुना नदी के चञ्चल नीलकमल की हृदयग्राही शोभा कोधारण करते हैं, इनकी महिमा का गान करते हुए कवि कहते हैं कि हे विधिसुते। ये दृगन्त जिस मनुष्य पर आधे क्षण के लिए भी गिर जायें तो वह सुधा-स्यन्दिनी वाणी का स्वामी तथा सिद्धनवरस वाला कवि शिरोमणि बनजाता है –

दधानः कालिन्दी-सलिलचलदिन्दीवरकलां
दृगन्तोऽयं येषां निपतति निमेषार्धमुपरि।
जना जायन्ते ते किल विधिसुते ! ते कविशिरो-
मणीभूतालास्यनवरससुधास्यन्दिवचसः॥[12]

जननी के सुन्दर भ्रूयुग मधु-मकरन्द से परिपूर्ण नेत्र-कमलों के साथ नीलकमल की चंचल पंक्ति के समान है यह भ्रूयुग भक्तों की जड़ता का विदारण करती है। भगवती सरस्वती के दिव्य कर्ण निरन्तर हरि के गुणगणों का श्रवण करते हुए भी अपने भक्तों की दीन-ध्वनि को अवधान पूर्वक सुनती है, ये कर्णयुगल

अपनी शोभा से कुमुद की शोभा को अपास्त करने वाले हैं, जिनके द्वारा कवि अपने दैन्य वर्णों को सुनने की याचना करता है। माँ सरस्वती के मीनाकृति वाले मणिमय स्वर्ण कर्णाभूषणों की कान्ति पूर्वदिशा में उदित होते हुए बालारुण की किरणों के समान शोभायमान है ये दोनों कर्णाभूषण भक्त के अज्ञान का ध्वंस करने वाले हैं—

स्वया कान्त्याऽकस्मादपि जननि ! संस्मारयति यद्
दिशः प्राच्या बालारुणकिरणमालारुणरुचः।
परं हैमं मीनाकृति तव नवीनं मणिमय –
मदज्ञानध्वंसं कलयतु वतंसद्वयमिदम् ॥[13]

साधक पं हरिशास्त्री भगवती सरस्वती के विशाल भाल का वर्णन करते हुए निवेदन करते हैं कि जिनके मस्तक पर घुंघराले बालों की अद्भुत छटा सुशोभित है, शिरोरत्न की कान्ति दिव्यछवि को उत्पन्न कर रही है, भालपर कस्तूरी का बिन्दु शरदकालीन चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करने वाला है, माँ का ऐसा विस्तृत भाल मेरे समस्त कष्ट जंजाल को नष्ट करे। आशुकवि भगवती के केशपाश की तुलना काले बादलों की घटा से करते हैं जिनमें कहीं अन्धकार का समूह है तो कहीं चन्द्रमा शोभायमान हो रहा है, कहीं पर तारे दैदीप्यमान हो रहे हैं तो कहीं पर अमृतधारा बरसती है कहीं पर यह सन्ध्या के समान दृश्यमान है तो कहीं यह तडित दीप्ति से सुशोभित है—

क्वचिद् ध्वान्तस्तोमा परिलसितसोमा क्वचिदपि
क्वचिद् दीप्यत्तारा बलदमृतधारा क्वचिदपि।
क्वचित् सन्ध्याकारा क्व च तडिदुदारा विजयते
त्वदीयेयं चित्रा चिकुरचयनीलाम्बुदघटा ॥[14]

भगवती के नीलकेशपाश घनघटा की छटा बड़ी विचित्र है। वीणा पर चलती हुयी अँगुलियाँ इस किसलय प्रान्त की शोभा को प्राप्त कर रही हैं । भगवती के दर्शन से परब्रह्म स्वयं पवित्र होते हैं और सच्चिदानन्द अवस्था को प्राप्त होते हैं ।

भगवती के द्रव्य, गुण, कर्म की स्तुति के उपरान्त उनके अभिजनों का स्तवन किया गया है। नख-शिख वर्णन के अनन्तर भगवती के हाथ में सुशोभित स्फटिक मणिमाला के दर्शन का भी हृदयग्राही स्तवन है। हस्तकमल में धारण को हुयी अनामिका और अँगूठे से आवर्तन की जाती हुयी स्फटिक मणिमाला उदित होते हुए बालारुण की शोभा को प्राप्त हो रही है, यह शोभा हृदय में जड़ता के अन्धकार की दीवार को तोड़ने वाली हैं।

पं हरिशास्त्री दाधीच श्रीविद्या साधना के परमसाधक पं. दुर्गाप्रसाद द्विवेदी से दीक्षित थे । शास्त्री जी स्वयं भी तन्त्रसाधना में उच्चकोटि की अवस्था को प्राप्त कर चुके थे। जिसप्रकार *सौन्दर्यलहरी* में भगवान शङ्कराचार्य ने बीजमन्त्रों को प्रतिष्ठित किया है उसी प्रकार पं. हरिशास्त्री ने वाणीलहरी में वाक्देवता के बीज मन्त्र 'ऐं'

को गुम्फित किया है । यह बीजमन्त्र 'अएम्' इन तीनवर्णों के सम्मेलन से बनता है। अ और एकार युगल में वृद्धि करके, उसके सिर पर अर्धेन्दु अनुस्वार रखने से वाक्बीज का प्राकट्य होता है। इसका जप करने वाले संसार में निश्चय ही वचनसिद्ध होकर कविशिरोमणि बन जाते हैं। राजा भी उनके चरणों में मस्तक झुकाते हैं—

अ ए कारद्वन्द्वे प्रगतवति वृद्ध्यैकतनुतां
शिरोन्यस्तार्धेन्दु प्रकटमिति वाग्बीजमनिशम् ।
जपन्ति द्राक् तेऽद्धा भुवि वचनसिद्धाः कविशिखा–
मणीभूता राज्ञामपि निदधते मौलिषु पदम् ॥[15]

शुचि-सौन्दर्यवान् हंसों की, मुक्ताहार की शोभा का वर्णन करने के उपरान्त इस लहरीस्तोत्र के अन्तिम पद्यों में भक्तिरस की पराकाष्ठा और कातर आत्मदैन्य प्रस्फुटित होता है । माधुर्य गुम्फित ललित-अभिव्यञ्जना से युक्त पदावली में कवि प्रार्थना करता है कि हे वागीश्वरी भगवती! तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त उदारता और करुणा से परिपूर्ण और कल्याणकारी है यह समस्त वेदज्ञान राशि का सार और विद्याओं का परम आधार है जो कोई मनुष्य अमृतवर्षिणी तुम्हारी इस मधुर मूर्ति का स्मरण करता है वह वाणी से परिपूर्ण विश्व का सृजन कर सकता है—

दयापारावारामविरतमुदारां शिवकरीं
परां विद्याऽऽधारां श्रुतिनिचयसारां सुरुचिराम् ।
सुधास्यन्दस्फूर्तिं तव मधुरमूर्तिं स्मरति यो
मनुष्यो वाग्विश्वं भगवति ! स विष्वक् कलयते ॥[16]

स्तोत्र के अन्तिम पद्य में कवि भावविभोर होकर भावान्विति की चरम सीमा में प्रवेश करता है प्रार्थना पद्य में कातर भाव से वात्सल्यमयी वागीश्वरी को निरन्तर नाना सम्बोधनों से पुकारते हुए कहता है—

मातर्व्याप्तचराचरे ! भगवति ! ब्राह्मि ! त्रिगुण्ये ! जगत्–
सृष्टि–स्थाननिरोधनैककनिपुणे ! लावण्यवारांनिधे !
चिद्रूपे ! वचसामधीश्वरि ! परे विद्ये ! विधातुः सुते
भक्त्या त्वां स्तुवतो हरेरपि मृदुं वर्णालिमाकर्णय ॥[17]

लहरीके अन्तिम पद्य में फलश्रुति वर्णित है कवि का अभिप्राय है कि जो कोई व्यक्ति हरिरचित इस वाणी लहरी का पाठ करेगा वह मनोवांछित फल को प्राप्त करते हुए परम वैदुष्य को प्राप्त करेगा—

य इमां कवि हरिरचितां वाणीलहरीं जनाः पठिष्यन्ति।
सम्प्राप्तवाञ्छितफला विद्वांसस्ते भविष्यति॥[18]

वाणीलहरी भगवती सरस्वती की स्तुति में निबद्ध भक्तिरस से परिपूर्ण श्रेष्ठस्तोत्र काव्य है। भाव, भाषा,, ध्वन्यात्मकता और कवित्व-वैदुष्यका भी इसमें मञ्जुल सन्निवेश है। विविध अलंकार अनायास भगवती के सौन्दर्य तथा लहरी की चारुता को समृद्ध करने वाले हैं। भक्तिरस की तीव्रतर अनुभूति इस लहरी की अनन्य विशिष्टता है। यह कविता महाकवित्व अथवा व्युत्पत्ति को अतिक्रान्त करके साधक-भक्त के हृदय का अपनी आराध्या से ऐकान्तिक आत्मनिवेदन और आह्लादकारी सम्वाद है।

सन्दर्भ

1. *पं. हरिशास्त्री दाधीच, व्यक्तित्व एवं कृतित्व*, डा. प्रेमशंकर शर्मा (शोध प्रबंध)
2. *भारती* 22/4 पृ. -12
3. *राजस्थानीय संस्कृत स्तोत्र साहित्य*, डॉ. नीरज शर्मा
4. *राजस्थान लहरी लीलायितम्*, प्रो. प्रभाकर शास्त्री, राजस्थान संस्कृत अकादमी, 1996, जयपुर।
5. *वाणीलहरी* 1; *राजस्थान लहरी लीलायितम्*, प्रो. प्रभाकर शास्त्री, राजस्थान संस्कृत अकादमी, 1996, जयपुर।
6. *वाणीलहरी* 2; वही
7. *वाणीलहरी* 6; वही
8. *वाणीलहरी* 12; वही
9. *वाणीलहरी* 16; वही
10. *वाणीलहरी* 29; वही
11. *वाणीलहरी* 34; वही
12. *वाणीलहरी* 36; वही
13. *वाणीलहरी* 40; वही
14. *वाणीलहरी* 42; वही
15. वाणीलहरी 46; वही
16. *वाणीलहरी* 48; वही
17. *वाणीलहरी* 50; वही
18. *वाणीलहरी* 51; वही

*संस्कृत विभाग,
श्रीकल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय
निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़)
**संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)